International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 465-466

इक्कीसवीं सदी में संत कबीरदास की प्रासंगिकता

पूनम
सहायक प्रवक्ता, कन्या महाविद्यालय, खरखौदा, सोनीपत, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

आज हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं। भौतिकता के इस युग में आज सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख विश्वशांति, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार, स्वार्थ, लोलुपता, नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का पतन आदि समस्याऐं हैं। आधुनिकता की चकाचौंध में मानवता लुप्त होती जा रही है। सहिष्णुता, सौहार्द एवं प्रेम की जगह असहिष्णुता, साम्प्रदायिकता और विद्वेष ने अपना स्थान बना लिया है। आज विश्व के हर कोने में हिंसा का बोलबाला है। अणुयुद्ध की आशंका ने सबको भयभीत कर रखा है और हर राष्ट्र चाहता है कि विश्व में शान्ति की स्थापना हो परन्तु इसके लिए विश्व एकता और सद्भावना की आवश्यकता है। ऐसे समय में हमें संत कबीरदास की याद आती है। विश्व के सामाजिक और अस्तित्त्ववादी दार्शनिक जो बातें आज कह रहे हैं कबीर ने लगभग छः सौ वर्ष पूर्व कह दी थी। अतः कबीर आज भी मध्यकालीन संतों में सबसे जीवंत हैं। निर्गुण भक्ति यानि ज्ञानाश्रयी शाखा के महान विचारक, दार्शनिक, सच्चे पथ–प्रदर्शक एवं समाज सुधारक संत कबीरदास जी का आविर्भाव चौदहवीं शताब्दी में हुआ। कबीर जिन परिस्थितियों में पैदा हुए उस समय समाज में धर्म के आधार पर बाह्य आडम्बर एवं पाखंड फैला हुआ था जो कि मानव समाज के लिए बहुत घातक था। समाज में जीवन के सभी क्षेत्रों में होड़ थी, अवसरवादी व्यवहार का बोलबाला था जिसके कारण मनुष्य का मनुष्य से संबंध बिगड़ने लगा था। सामाजिक संघटन टूट गया था। हर एक जाति, धर्म और वर्ग के लोग संकुचित वृत्ति के हो गए थे। जनसाधारण की अवहेलना करके न तो कोई राजा महान बन पाया है और न ही कोई कवि या साहित्यकार। जनसाधारण से जुड़कर ही कोई महान या प्रभावशाली बनता है। संतों की वाणियों की प्रासंगिकता सदैव ही बनी रहती है क्योंकि उनकी विचारधारा किसी समय या काल में बंधकर नहीं रहती। संत कबीरदास ने समकालीन वातावरण के संदर्भ में जो विचार और आदर्श सामने रखे थे वे आज भी अपनी उपयोगिता, महत्ता और आवश्यकता स्थापित करते हैं।

आज वैज्ञानिक युग में भी लोगों पर अंधविश्वास हावी होता जा रहा है लोग पूजा–अर्चना, सेवा, जप–तप, दान आदि के भ्रम में पड़ते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में संत जी की वाणियों की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। कबीरदास ने भक्ति के नाम पर किए गए पूजा–अर्चना, सेवा, जप–तप को बाहरी दिखावा बताया है। यदि मनुष्य का अंतःकरण पवित्र है तो उसे ईश्वर को खोजने के लिए मंदिर या मस्जिद में जाने की आवश्यकता नहीं है। वह तो घट–घट व्यापी है।

इक्कीसवीं सदी में चारों ओर अराजकता का वातावरण फैला हुआ है। समाज, धर्म, राजनीति हर क्षेत्र में अशांति व्याप्त है। इसका मुख्य कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार – ये पाँचों मानसिक विकार हैं। सभी धर्म–सम्प्रदायों ने इन्हें मानव देह का शत्रु माना है। यदि हम एकाग्रचित होकर अवलोकन करें तो हमें ज्ञात होगा कि अधिकांश समस्याएं तो केवल हमारे अहंकार के कारण हैं। इस संबंध में कबीर कहते हैं –

''मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैषड़ा, मेरी गल की पास।।''[1]

वर्तमान समय में मनुष्य धन के संग्रह में सामाजिक मूल्यों को पीछे छोड़ता जा रहा है। इक्कीसवीं सदी के वैज्ञानिक और तकनीकी युग में मनुष्य भौतिक सुख–सुविधाओं को जुटाने में लगा हुआ है। धन–लिप्सा की प्रतिस्पर्धा पूरे विश्व में व्याप्त है। मनुष्य कभी न समाप्त होने वाली दौड़ में शामिल होने लगा है। सम्पन्नता बढ़ रही है पर माया के फंदे कसते जा रहे हैं। कबीर की वाणी हमें इस चक्र से बाहर निकालती है। कबीर कहते हैं कि आवश्यकताएँ सीमित होनी चाहिए और मनुष्य में संतोष की भावना ही वास्तविक धन है। इस संबंध में कबीर कहते हैं –

''रूखा–सूखा खाइ के, ठंडा पानी पीव।
देखि विरानी चोपड़ी, मत ललचाव जीव।।''[2]

आज की असीमित द्रव्यलालसा और अंधी दौड़ से त्रस्त मानव को संतोष का पाठ पढ़ाते हैं। उनका बताया मार्ग ही मानव को शांति पथ पर ले जा सकता है। वर्तमान समय में पाखंडी साधु–संतों की भी कमी नहीं है जो भोली–भाली जनता को मूर्ख बनाकर अपने स्वार्थो की सिद्धि करते हैं। धर्म के ठेकेदार मंदिर–मस्जिद छोड़कर संसद और न्यायालय तक पहुँच चुके हैं। बाबरी मस्जिद और रामजन्मभूमि की समस्या इसका ही परिणाम है। इस प्रकार की समस्या को संतों द्वारा बताए गए मार्ग से ही सुलझाया जा सकता है। संत सभी को प्रेम का पाठ पढ़ाते हैं और प्रेम की महत्ता बताते हुए कहते हैं –

''पोथि पढ़ि–पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोई।
एकै आखिर प्रेम का पढै सु पंडित होई।।''[3]

कबीर अनपढ़ थे, लेकिन उनके पास जो विवेक था वह आज के शिक्षित वर्ग को भी मात करता है। कबीर की तर्कशीलता ही उनकी प्रासंगिकता है। उनके छुआछूत से हमारा समाज आज भी ग्रस्त है। हमारे समाज में आज भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो इन सबमें विश्वास करता है। आज हमारा देश धर्म, जाति, भाषा के नाम पर विभिन्न वर्गों में बँटता जा रहा है। देश तो क्या पारिवारिक परिस्थितियाँ भी शोचनीय परिलक्षित होती हैं। समाज पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर अपने सांस्कृतिक मूल्य भुलाता जा रहा है। संत कबीरदास की वाणी का महत्त्व यहाँ स्वतः सिद्ध हो जाता है क्योंकि उन्होंने समाज में जातिगत व धार्मिक भेदभाव को

मिटाकर सबको मानवता के धरातल पर लाने का प्रयास किया। उनके अनुसार मनुष्य की एक ही जाति है, एक ही धर्म है और एक ही वर्ग है। संसार में कोई छोटा या बड़ा नहीं अपितु सभी मनुष्य समान हैं। इस सम्बंध में उनका कहना है –

अव्वल अल्लह नूर उपाया कुदरत के सब बंदे।
एक नूर ते सब जन उपज्या कौन भले को मंदे।।[4]

आज का युवा कुसंगति में पड़कर अपने अनमोल जीवन को नष्ट कर रहा है। संतों ने अपनी वाणियों में सत्संगति की बड़ी महत्ता बताई है। इनसे प्रेरणा लेकर देश का हर युवा अच्छा नागरिक बनकर देश की प्रगति में सहायक हो सकता है। संत कबीरदास ने कर्म को महत्त्व दिया और कहा कि प्रत्येक मनुष्य सद्कर्म करके चरित्रवान बन सकता है।

वैश्वीकरण और बाजारवाद की सभ्यता ने मनुष्य को कृत्रिम जीवनचर्या सौंप दी है। मानव के हृदय की निष्कपटता और निश्छलता तथा आचरण की श्रेष्ठता समाप्त होती जा रही है। कथनी और करनी में अंतर आ गया है। मनुष्य जो कहता है उस पर आचरण नहीं करता। कबीर यहाँ भी दिग्भ्रमित मानव का मार्गदर्शन करता है। वह मन की निर्मलता और आचरण की पवित्रता पर बल देता है। कबीर जिस निश्छलता और निष्कपटता के आकांक्षी हैं वह यदि आज जीवन में आ जाए तो निश्चित रूप से समाज और मानवता व्यवस्थित होगी। मनुष्य अधिक सुखी हो जाएगा। संत कबीरदास ने 'अपने आपको चीन्हों' तथा 'अपने आपको सुधारो' का नारा लगाया। उनका मत था कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको सुधार ले तो पूरा समाज सुधर सकता है।

हिंसा का जो रूप कबीरकालीन समाज में व्याप्त था वही रूप वर्तमान में भी दृष्टिगोचर होता है। साम्प्रदायिक दंगे, बलात्कार, तोड़–फोड़, आगजनी, लूटपाट, अल्पसंख्यकों की सामूहिक हत्याएँ जैसी घटनाएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगी हैं। जब हिंसात्मक वातावरण व्याप्त हो तो ऐसे वातावरण में सर्वत्र अहिंसा का अलख जगाने वाले समाज सुधारकों की आवश्यता स्वतः ही हो जाती है। संत कबीरदास जी अहिंसा का उपदेश देते हैं। महात्मा बुद्ध का भी सूत्र था – हिंसा को अहिंसा से, घृणा को प्रेम से, क्रोध को दया से और कृपण को दान से जीतो।

विश्वशांति की परम्परा में गाँधीजी ने कहा था – ''अहिंसा सत्य का प्राण है।'' आचार्य तुलसी का कथन है कि – ''अहिंसा शान्ति का मूलाधार है।'' इसमें कोई संदेह नहीं कि विज्ञान की चमत्कारिक प्रगति ने पूरे विश्व को एक छोटे से दायरे में बाँध दिया है, परन्तु बाहरी तौर पर विश्व शांति से हम कोसों दूर हैं। मानव न केवल समाज से अपितु अपने आपसे ही दूर होता जा रहा है।

इस सदी तक आते–आते जहाँ अनपढ़ता घटी है, वहाँ पाखण्डी साधु–सन्तों, मंदिरों–मस्जिदों की गिनती में बढ़ौतरी हुई है। जाति–पाति और साम्प्रदायिकता का विष इस तरह फैला कि सांस लेना तक मुश्किल हो रहा है। झूठ–फरेब, मुखौटापरस्ती का चलन तो आम बात है। हमारी मध्ययुगीन मानसिकता आज भी बरकरार है। तत्कालीन युग की लगभग समस्त बुराईयां वर्तमान परिवेश में भी विद्यमान हैं। चारों तरफ अराजकता, भय, संत्रास और अंधविश्वास का बोलबाला है। आतंकवाद के राक्षस अपने विकराल पंजों में लगभग पूरे विश्व को समेट चुका है। यूरोप और एशिया के अनेक देश इस समस्या से आक्रान्त हैं। भारत तो विशेष रूप से पीड़ित है।

ऐसे में संतो की दिव्य वाणी के महत्त्व को कौन नकार सकता है। कबीर एक आईना है जिसमें हम अपना चेहरा देख सकते हैं। कबीर एक ऐसा खरा मापदण्ड है जिसके आलोक में हम अपने समाज को पहचान और परख सकते हैं। हम संतों एवं महात्माओं के उपदेशों और शिक्षाओं का अनुसरण करके आज के भौतिकवाद के युग में साम्प्रदायिक सौहार्द, जन–कल्याण, विश्वशांति, भ्रातृत्व, समानता, सहिष्णुता, बंधुत्व, सत्य एवं अहिंसा के नैतिक मूल्यों की स्थापना करके 'वसुधैव कुटुम्बकम' के मूल मंत्र की अमरवाणी को सार्थक कर सकते हैं।

संदर्भ

1. कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुंदरदास, पृष्ठ 92
2. प्रथम खंड) सं. डॉ. युगेश्वर, पृष्ठ 494
3. कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुंदरदास, पृष्ठ 103
4. कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुंदरदास, पृष्ठ 242